शोधार्थी —दिनेश कुमार
शोध–निर्देशक —डॉ. अजय कुमार नावरिया
विभाग —हिंदी
विषयः अज्ञेय और मुक्तिबोध के साहित्य चिंतन का तुलनात्मक अध्ययन

शोध–सार

हिंदी में साहित्य चिंतन को दो परस्पर विरोधी श्रेणियों में बाँटकर देखने की प्रवृति प्रबल रही है। एक को मार्क्सवाद के साथ जोड़ा जाता है तो दूसरे को मार्क्सवाद विरोधी साहित्य चिंतन के रूप में पहचाना जाता है। साहित्य चिंतन के इस परिदृश्य में ऐतिहासिक रूप से यह मान लिया गया कि मुक्तिबोध मार्क्सवादी साहित्य चिंतक हैं और अज्ञेय मार्क्सवाद विरोधी। वर्तमान समय में जब साहित्य के क्षेत्र में वैचारिक कट्टरता का दौर शिथिल पड़ गया है, ऐसे में, सृजन कर्म से अधिक विचारधारा को आधार बनाकर किए गए हर एक मूल्यांकन का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है। तभी, हिंदी में वैचारिक मताग्रहों से अलग एक स्वस्थ साहित्य चिंतन का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

अज्ञेय मुक्तिबोध के समकालीन भी हैं और उनसे आगे भी हैं। अर्थात् अज्ञेय सिर्फ वही नहीं हैं जो मुक्तिबोध के समकालीन हैं बल्कि समय की दृष्टि से कुछ अधिक भी हैं। मुक्तिबोध को अपेक्षाकृत कम समय मिला। इसलिए, यह स्पष्टतः नहीं कहा जा सकता कि मुक्तिबोध का चिंतन आगे किस दिशा में जाता? हाँ, उनका चिंतन आगे जरूर बढ़ता यह निश्चिततः कहा जा सकता है, क्योंकि मार्क्सवाद के करीब आने के बाद भी 'तार सप्तक' के अपने वक्तव्य में उन्होंने स्पष्टतः स्वीकार किया था कि उन्हें अपनी हर विकास स्थिति में असंतोष रहा है और है। मुक्तिबोध मार्क्सवादी साहित्य चिंतन के भीतर स्वयं संघर्ष कर रहे थे। श्रीपाद अमृत डांगे को लिखा गया उनका पत्र इस बात का प्रमाण है। दरअसल, अज्ञेय और मुक्तिबोध दोनों साहित्य को राजनीति का आनुषंगिक बना देने के घोर विरोधी हैं। वे दोनों प्रेमचंद के उस विचार की रक्षा करते हैं कि साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है।

मुक्तिबोध का मार्क्सवादी होना एक सुपरिचित तथ्य है। मुक्तिबोध जिस जमीन पर खड़े होकर चिंतन की ओर प्रवृत होते हैं, वह जमीन मार्क्सवाद की है। अज्ञेय के चिंतन के लिए मार्क्सवाद की ऐसी अनिवार्यता नहीं है। मुक्तिबोध मार्क्सवादी हैं, अज्ञेय मार्क्सवादी नहीं हैं। दोनों को परस्पर विरोधी घोषित करने के लिए क्या इतना ही पर्याप्त है? हिंदी साहित्य चिंतन में तो

कुछ ऐसा ही दिखाई देता है। हिंदी में अज्ञेय और मुक्तिबोध अलग–अलग दो परस्पर विरोधी मूल्यों के प्रतीक मान लिए गए हैं। इस संदर्भ में यह भी एक सुपरिचित तथ्य है कि मुक्तिबोध अपने जीवन काल में घोर उपेक्षित रहे और प्रगतिशील आंदोलन में अलग–थलग पड़े रहे। लेकिन, मृत्यु के बाद प्रगतिशील आंदोलन ने उन्हें हाथों–हाथ लिया और अज्ञेय के विरुद्ध ला खड़ा किया। इस तरह, जो मुक्तिबोध जीवन भर उपेक्षित रहे, उन्हीं मुक्तिबोध को अज्ञेय के महत्व को कम करने के लिए, उन्हें गिराने के लिए अस्त्र के रूप में इस्तेमाल किया गया। साहित्य चिंतन की इससे बड़ी विडंबना कुछ नहीं हो सकती। मुक्तिबोध का पुनर्मूल्यांकन कर उनके महत्व को रेखांकित करना बिल्कुल उचित कार्य था, लेकिन इस प्रक्रिया में उन्हें अज्ञेय के विरुद्ध खड़ा कर देना या अज्ञेय के विरुद्ध उनका रणनीतिक इस्तेमाल करना कहीं से भी उचित नहीं ठहराया जा सकता है। ऐसा लगता है कि प्रगतिशील आलोचना को एक ऐसे रचनाकार की जरूरत थी जिसे वे अज्ञेय के मुकाबले खड़ा कर सकें। मुक्तिबोध से इसी जरूरत की पूर्ति की गई।

आज अज्ञेय बनाम मुक्तिबोध की उस बहस से बाहर निकलने की जरूरत है। एक रचनाकार के प्रतिमानों पर दूसरे का मूल्यांकन अन्याय सरीखा है। इसके लिए एक संतुलित–समावेशी दृष्टिकोण अपनाने की जरूरत है। किसी को पसंद करना दूसरे को खारिज करने का पर्याय नहीं होना चाहिए। दोनों रचनाकारों के अपने विचार हैं उन्हें एक–दूसरे के आलोक में देखने के बजाय साथ मे ंरखकर देखना चाहिए। साथ में रखकर देखने के क्रम में दोनों की भिन्नताओं को उनका वैशिष्ट्य मानना चाहिए। भिन्नता को कमी या दोष मानने से हम आलोच्य रचनाकार के साथ न्याय नहीं कर पाते हैं। अज्ञेय और मुक्तिबोध को एक ही समय की दो भिन्न दृष्टियाँ मानकर भी अध्ययन किया जा सकता है। साहित्य का क्षेत्र राजनीतिक चुनाव का क्षेत्र नहीं कि हमारे पास एक ही मत है और उसे हम सिर्फ एक प्रतिद्वंद्वी को दे सकते हैं। दोनों अपने समय के बड़े रचनाकार हैं। दोनों की अपनी प्राथमिकताएँ, विचार–प्रणालियाँ और जीवन–आदर्श हैं। कई बार कुछेक बिंदुओं पर दोनों मिलते से लगते हैं कई बार बिल्कुल भिन्न दिखते हैं। उनकी भिन्नता को उनका वैशिष्ट्य समझना चाहिए, विरोध नहीं।